[2020] 4 उम. नि. प. 40

# त्रिलोकी नाथ सिंह

बनाम

# अनिरूद्ध सिंह (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत और अन्य

[2010 की सिविल अपील सं. 3961]

6 मई, 2020

**न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर और न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी**

**सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 23, नियम 3 और 3क तथा आदेश 43, नियम 1क [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34] – पैतृक संपत्ति में हिस्से के विभाजन हेतु घोषणा के लिए वाद फाइल किया जाना – वाद खारिज हो जाना – संपत्ति पर काबिज पक्षकार द्वारा पर-पक्षकार को संपत्ति विक्रय करना – द्वितीय अपील में पक्षकारों के बीच समझौता हो जाना – समझौते के आधार पर डिक्री पारित किया जाना – पर-पक्षकार द्वारा वाद फाइल करके डिक्री को चुनौती दिया जाना – चुनौती पर वर्जन – जहां समझौते के आधार पर डिक्री पारित की गई हो, वहां पर-पक्षकार इसे कपटपूर्ण, अवैध घोषित करने के लिए सिविल वाद फाइल करके चुनौती देने का हकदार नहीं होता है ।**

अपील के तथ्यों के अनुसार, अपीलार्थी-वादी के पक्षकथन के अनुसार वादपत्र में वर्णित भूमि मूल रूप से लाखन सिंह की थी, जिसकी तीन पुत्रों अर्थात् दीनदयाल सिंह, जालिम सिंह और कुंजन सिंह को अपने पीछे छोड़कर मृत्यु हो गई थी । दीनदयाल सिंह की कथित रूप से अपने पिता के जीवनकाल के दौरान नि:संतान मृत्यु हो गई थी और उसके अन्य भाई अर्थात् जालिम सिंह की भी एक पुत्र राम नाथ सिंह और दो पुत्रियों, सम्पतिया और सोनिया को अपने पीछे छोड़कर मृत्यु हो गई थी । जहां तक तीसरे पुत्र कुंजन सिंह का संबंध है, उसकी कथित रूप से नि:संतान मृत्यु हो गई थी किंतु अपनी मृत्यु से पूर्व उसने अपने हिस्से की भूमि तारीख 10 जुलाई, 1978 के एक दान विलेख के आधार पर

सम्पतिया को दान में दे दी थी जिस पर उसका कब्जा हो गया था । सलेहरी पत्नी सत्यनारायण प्रसाद ने स्वयं को स्वर्गीय कुंजन सिंह की पुत्री होने का दावा करते हुए पूर्वोक्त दान को अपास्त करने के लिए और पैतृक संपत्ति में अपने हिस्से के विभाजन के लिए एक विभाजन वाद फाइल किया था । उस वाद में, सम्पतिया, दुलारी देवी, राम नाथ और सोनिया को प्रत्यर्थी-प्रतिवादी पक्षकार के रूप में अभियोजित किया गया था । कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान रामनाथ की मृत्यु हो गई थी और केवल सम्पतिया ने वाद में प्रतिवाद किया था । वाद को खारिज कर दिया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सलेहरी कुंजन सिंह की पुत्री नहीं है और उसका संपत्तियों में कोई अधिकार नहीं है । सलेहरी ने एक हक आवेदन फाइल किया, जिसे खारिज कर दिया गया । सम्पतिया द्वारा एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा कुल 3 बीघा 6 कट्ठा 3 धुर्स भूमि अपीलार्थी-वादी को 25,000/-रुपए की राशि में बेच दी गई थी और अपीलार्थी-वादी को वाद संपत्ति पर काबिज कर दिया गया था । जुलाई, 1995 में जब प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों ने अपीलार्थी-वादी की वाद संपत्ति के कब्जे में हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया और पूछताछ करने पर यह उजागर हुआ कि हस्तक्षेप का दावा सम्पतिया और सलेहरी के बीच हुई एक समझौता डिक्री के आधार पर किया गया है, जो पटना उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल द्वितीय अपील में निष्पादित की गई थी । अपीलार्थी-वादी ने चतुर्थ उप-न्यायाधीश, छपरा के समक्ष यह घोषणा करने की ईप्सा करते हुए वाद फाइल किया गया था कि 1988 की द्वितीय अपील सं. 495 में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितंबर, 1994 को पारित की गई समझौता डिक्री अवैध, अप्रवर्तनीय है और कपट तथा दुर्व्यपदेशन द्वारा अभिप्राप्त की गई थी । प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों ने वाद का इस आधार पर प्रतिवाद किया कि वाद कायम रखने योग्य नहीं है । यह भी अभिकथन किया गया था कि वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3क के अतिक्रमण में है । अपीलार्थी-वादी को उप-न्यायाधीश के न्यायालय में वाद फाइल करने का कोई अधिकार नहीं था बल्कि उसे उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल करना चाहिए था जिसमें समझौता डिक्री फाइल की गई थी और अपीलार्थी-वादी को व्यादेश के अनुतोष की ईप्सा करने का कोई अधिकार नहीं है ।

अभिलेख पर साक्ष्य का सम्यक् मूल्यांकन करने के पश्चात् वाद खारिज कर दिया गया । अपील न्यायालय द्वारा अपील खारिज कर दी गई । अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – विधान-मंडल द्वारा तारीख 1 फरवरी, 1977 से सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधन पुर:स्थापित करके आदेश 23 के नियम 3क को प्रवर्तन में लाया गया था, जिसमें किसी डिक्री को इस आधार पर अपास्त करने के लिए वाद संस्थित करने का वर्जन सृजित किया गया है कि जिस समझौते पर डिक्री आधारित थी, वह विधिपूर्ण नहीं था । पक्षकारों के बीच समझौता कराने का प्रयोजन सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष लंबित विभिन्न विवादों को सदैव के लिए समाप्त करना है । विनिश्चयों की अंतिमता सभी न्यायनिर्णयनकारी न्यायालयों का अंतर्निहित सिद्धांत है । इस प्रकार, पक्षकारों के बीच हुए समझौता कदापि और आगे मुकदमेबाजी के सृजन का आधार नहीं होना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3क में यह विनिर्दिष्ट वर्जन लगाया गया है कि कोई डिक्री अपास्त करने के लिए वाद इस आधार पर नहीं लाया जाएगा कि वह समझौता, जिस पर डिक्री आधारित है, विधिपूर्ण नहीं था । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के नियम 3 की स्कीम मुकदमेबाजी की बहुलता को निवारित करने और पक्षकारों को सौहार्दपूर्ण रूप से एक ऐसा समझौता करने की अनुज्ञा देने के लिए है जो विधिपूर्ण हो, लेखबद्ध हो और पक्षकारों की ओर से एक स्वैच्छिक कृत्य हो । न्यायालय सहमति के आधार पर ऐसा समझौता कराने में और इस समझौते को अंतिमता देने में सहायक हो सकता है । न्यायालय को कभी भी किसी अनिच्छुक पक्षकार पर कोई समझौता अधिरोपित करने के लिए पक्षकार नहीं होना चाहिए, ऐसे पक्षकार को न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के परंतुक के अधीन आवेदन के आधार पर इसे प्रश्नगत किए जाने की स्वतंत्रता है । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि पहले आदेश 43, नियम 1(ड) के अधीन, आदेश 23, नियम 3 के अधीन करार, समझौता या तुष्टि अभिलिखित करने या अभिलिखित

करने से इनकार करने के लिए आदेश के विरुद्ध अपील, जिसमें समझौता अभिलिखित किया था और यह विनिश्चय किया गया था कि यह एक विधिमान्य समझौता था या नहीं, कायम रखने योग्य थी । किंतु संशोधनकारी अधिनियम द्वारा, पूर्वोक्त खंड को हटा दिया गया है, जिसका परिणाम यह है कि अब आदेश 23 के नियम 3 के अधीन किसी करार या समझौते को अभिलिखित करने या अभिलिखित करने से इनकार करने के आदेश के विरुद्ध अपील कायम रखने योग्य नहीं है । इस प्रकार, जो संशोधन पुर:स्थापित किया गया था, उसके पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3क के अंतर्गत आने वाले मामलों में न तो समझौता अभिलिखित करने वाले आदेशों के विरुद्ध अपील करने का और न ही कोई वाद फाइल करने का कोई उपचार उपलब्ध है । इसलिए आदेश 43 के नियम 1क(2) के अधीन उस पक्षकार को एक अधिकार दिया गया है, जो समझौते से इनकार करता है और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के नियम 3 के परंतुक के निबंधनों के अनुसार उस बाबत न्यायालय के आदेश के लिए निवेदन करता है । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(3) ऐसी अपील के लिए वर्जन नहीं होगा, क्योंकि यह धारा वहां लागू होती है जहां समझौते या करार का तथ्य विवादग्रस्त नहीं है । वर्तमान मामले में, विभाजन के लिए वाद वर्ष 1978 में फाइल किया गया था और विचारण न्यायालय के विनिश्चय के पश्चात् मामला प्रथम अपील में और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील सं. 495/86 में गया था । प्रथम अपील, जो यथा उल्लिखित वाद की निरंतरता थी, के लंबित रहने के दौरान लंबित कार्यवाहियों के पक्षकारों में से एक पक्षकार अर्थात् सम्पतिया ने अभिकथित रूप से तारीख 6 जनवरी, 1984 को अपीलार्थी के साथ एक विक्रय विलेख किया था । असंदिग्ध रूप से, उस भूमि की बाबत, जो तारीख 6 जनवरी, 1984 के विक्रय विलेख की विषयवस्तु थी, अधिकार, हक और हित से संबंधित विवाद्यक अपूर्ण था और अंतिम रूप से विनिश्चित नहीं किया गया था । इस अर्थ में, अपीलार्थी का दावा लंबित अपील में सम्पतिया के पक्ष में या उसके विरुद्ध होने वाले विनिश्चय द्वारा शासित होना चाहिए था । इसका अवश्यम्भावी निष्कर्ष यह है कि तारीख 6 जनवरी, 1984 के विक्रय विलेख द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में किए गए अभिकथित

संव्यवहार उक्त कार्यवाहियों के परिणाम की पालना में होना चाहिए था, जिसकी परिणति 1986 की द्वितीय अपील सं. 495 में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितंबर, 1994 के समझौता डिक्री में हुई थी । वास्तव में, अपीलार्थी कथित समझौता डिक्री का एक पक्षकार नहीं था । तथापि, वह तारीख 6 जनवरी, 1984 के कथित विक्रय विलेख में निर्दिष्ट भूमि पर अधिकार, हक और हित का दावा कर रहा था, जो उसके द्वारा सम्पतिया-निर्णीतऋणी तथा वाद में पक्षकार से खरीदी गई थी । यह सुस्थिर है कि द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा पारित समझौता डिक्री का संबंध वाद के पक्षकारों के बीच वाद संस्थित करने की पिछली तारीख से होगा । अपीलार्थी द्वारा अब संस्थित किए गए वाद में, अधिक से अधिक, वह सम्पतिया के विरुद्ध अनुतोष की ईप्सा कर सकता था, किंतु उच्च न्यायालय द्वारा विभाजन के लिए वाद में पारित की गई समझौता डिक्री को प्रश्नगत करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी विभाजन के लिए वाद में की कार्यवाहियों के एक पक्षकार (सम्पतिया) द्वारा अभिकथित रूप से तारीख 6 जनवरी, 1984 को निष्पादित कथित विक्रय विलेख के आधार पर न्यागत अपने अधिकार, हक या हित के संरक्षण के लिए वाद फाइल कर सकता था, जिसकी न्यायालय द्वारा स्वतंत्र रूप से विधि के अनुसार इसके अपने गुणागुण के आधार पर परीक्षा की जा सकती थी । विचारण न्यायालय, किसी भी दशा में, विभाजन के लिए वाद में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितंबर, 1994 की समझौता डिक्री की विधिमान्यता के संबंध में इस अपील में अपीलार्थी की शिकायत का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम नहीं होगा । दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी केवल अपने पूर्वाधिकारी-सम्पतिया के माध्यम से समझौता डिक्री के संदर्भ में, सम्पतिया को उपलब्ध अधिकारों और उपचारों की सीमा तक, दावा कर सकता है । केवल इस कारण कि अपीलार्थी प्रस्तुत मामले के तथ्यों में समझौता डिक्री का पक्षकार नहीं था, इस बात से अपीलार्थी को कोई सहायता नहीं मिलेगी, उच्च न्यायालय द्वारा पारित की गई समझौता डिक्री की विधिमान्यता को सिविल न्यायालय के समक्ष एक मूल वाद के द्वारा इसे कपटपूर्ण, अवैध और उस पर आबद्धकर न होने की घोषणा करने के लिए वाद हेतुक देने की बात तो दूर । (पैरा 16, 17, 18, 19, 20, 21 और 22)

## अवलंबित निर्णय

पैरा

[2014] (2014) 15 एस. सी. सी. 471:
**आर. राजन्ना** बनाम **एस. आर. वेंकटस्वामी और अन्य** ; 15

[2005] (2005) 5 एस. सी. सी. 566
**पुष्पा देवी भगत(मृत) विधिक प्रतिनिधि साधना राय (श्रीमती) की मार्फत** बनाम **राजिन्दर सिंह और अन्य** । 14

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल अपील सं. 3961.**

2003 की द्वितीय अपील सं. 153 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 20 अप्रैल, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** सर्वश्री एच. के. भट्टाचार्य, बी. पी. यादव, कुमार नीरज, एल. के. पॉनम, (सुश्री) सीमा शर्मा, नीरज बॉबी पॉनम और (सुश्री) टॉमथिन्नगंबी कॉयजम

**प्रत्यर्थियों की ओर से** श्री एम. योगेश कान्ना

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी ने दिया ।

**न्या. रस्तोगी** – इस अपील में हमारे विचार के लिए उद्भूत प्रश्न यह है कि क्या किसी समझौते के आधार पर पारित डिक्री को कार्यवाहियों के पर-व्यक्ति द्वारा एक अलग वाद में चुनौती दी जा सकती है या नहीं ।

2. वे प्रारंभिक तथ्य, जो वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं और वे परिस्थितियां जिनमें यह प्रश्न हमारे विचार के लिए उद्भूत हुआ है, यह हैं कि अपीलार्थी-वादी ने चतुर्थ उप-न्यायाधीश, छपरा के समक्ष यह घोषणा करने की ईप्सा करते हुए वाद फाइल किया गया था कि 1988 की द्वितीय अपील सं. 495 में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितंबर, 1994 को पारित की गई समझौता डिक्री अवैध, अप्रवर्तनीय है

और कपट तथा दुर्व्यपदेशन द्वारा अभिप्राप्त की गई थी और प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध उन्हें वाद संपत्ति के शांतिपूर्ण कब्जे में प्रवेश करने से अवरुद्ध करने के लिए व्यादेश जारी करने की भी प्रार्थना की गई थी ।

3. संक्षेप में अपीलार्थी-वादी का पक्षकथन यह है कि वादपत्र की अनुसूची 1 में वर्णित भूमि मूल रूप से लाखन सिंह की थी, जिसके तीन पुत्र अर्थात् दीनदयाल सिंह, जालिम सिंह और कुंजन सिंह को अपने पीछे छोड़कर मृत्यु हो गई थी । दीनदयाल सिंह की कथित रूप से अपने पिता के जीवनकाल के दौरान नि:संतान मृत्यु हो गई थी और उसके अन्य भाई अर्थात् जालिम सिंह की भी मृत्यु हो गई थी जो अपने पीछे एक पुत्र राम नाथ सिंह और दो पुत्रियां, सम्पतिया और सोनिया को छोड़ गया था । जहां तक तीसरे पुत्र कुंजन सिंह का संबंध है, उसकी कथित रूप से नि:संतान मृत्यु हो गई थी किंतु अपनी मृत्यु से पूर्व उसने अपने हिस्से की भूमि तारीख 10 जुलाई, 1978 के एक दान विलेख के आधार पर सम्पतिया को दान में दे दी थी जिस पर उसका कब्जा हो गया था ।

4. अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि सलेहरी पत्नी सत्यनारायण प्रसाद ने स्वयं को स्वर्गीय कुंजन सिंह की पुत्री होने का दावा करते हुए पूर्वोक्त दान को अपास्त करने के लिए और पैतृक संपत्ति में अपने हिस्से के विभाजन के लिए मुंशिफ न्यायालय, छपरा में 1978 का एक विभाजन वाद सं. 13 फाइल किया था । उस वाद में, सम्पतिया, दुलारी देवी, राम नाथ और सोनिया को प्रत्यर्थी-प्रतिवादी पक्षकार के रूप में अभियोजित किया गया था । कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान रामनाथ की मृत्यु हो गई थी और केवल सम्पतिया ने वाद में प्रतिवाद किया था । यह भी उल्लेख किया गया कि वाद को खारिज कर दिया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सलेहरी कुंजन सिंह की पुत्री नहीं है और उसका संपत्तियों में कोई अधिकार नहीं है ।

5. सलेहरी ने 1984 का हक आवेदन सं. 19 फाइल किया, जिसे तारीख 7 अप्रैल, 1986 को खारिज कर दिया गया । आगे पक्षकथन यह है कि सम्पतिया द्वारा तारीख 6 जनवरी, 1984 को एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा कुल 3 बीघा 6 कट्ठा 3 धुर्स भूमि अपीलार्थी-वादी

को 25,000/- रुपए की राशि में बेच दी गई थी और अपीलार्थी-वादी को वाद संपत्ति पर काबिज कर दिया गया था । जुलाई, 1995 में जब प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों ने अपीलार्थी-वादी की वाद संपत्ति के कब्जे में हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया और पूछताछ करने पर यह उजागर हुआ कि हस्तक्षेप का दावा सम्पतिया और सलेहरी के बीच हुई एक समझौता डिक्री के आधार पर किया गया है, जो पटना उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल द्वितीय अपील में निष्पादित की गई थी ।

6. अपीलार्थी-वादी का पक्षकथन यह है कि उक्त समझौता डिक्री कपट और दुर्व्यपदेशन द्वारा उच्च न्यायालय से इस मुख्य सत्यता को छिपाकर अभिप्राप्त की गई थी कि विक्रय विलेख कार्यवाहियों के पक्षकारों के बीच हुए समझौते से बहुत पहले निष्पादित किया गया था, इसलिए उक्त समझौता, जिसे कपट और दुर्व्यपदेशन द्वारा अभिप्राप्त किया गया था, शून्य घोषित किए जाने योग्य है ।

7. प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों ने वाद का इस आधार पर प्रतिवाद किया कि वाद कायम रखने योग्य नहीं है । यह भी अभिकथन किया गया था कि वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3क के अतिक्रमण में है । यह भी दलील दी गई कि अपीलार्थी-वादी को उप-न्यायाधीश के न्यायालय में वाद फाइल करने का कोई अधिकार नहीं था बल्कि उसे उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल करना चाहिए था जिसमें समझौता डिक्री फाइल की गई थी और अपीलार्थी-वादी को व्यादेश के अनुतोष की ईप्सा करने का कोई अधिकार नहीं है । इसके अतिरिक्त, इसे संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 द्वारा वर्जित होना बताया गया था । प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों का लिखित कथन में विनिर्दिष्ट अभिवाक् यह था कि कुंजन सिंह की मृत्यु नि:संतान नहीं हुई थी बल्कि उसकी सलेहरी नामक एक पुत्री थी जो उसकी एकमात्र उत्तराधिकारी है । इस बात से भी इनकार किया गया कि उसने सम्पतिया के पक्ष में एक दान विलेख निष्पादित किया था और उसे दान की गई भूमि का कब्जा दिया था । तथापि, यह बात स्वीकार की गई थी कि सलेहरी ने 1979 का एक विभाजन वाद फाइल किया था, जिसमें वह हार गई थी और उसके पश्चात् उसने 1984

की प्रथम अपील सं. 19 फाइल की थी, जो खारिज कर दी गई थी । उच्च न्यायालय के समक्ष 1986 की द्वितीय अपील सं. 495 में, उसकी प्रेरणा पर, पक्षकारों के बीच एक समझौता निष्पादित हुआ था और तद्नुसार उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितंबर, 1994 की समझौता डिक्री पारित की गई थी । समझौते की शर्तों का सार इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"उक्त समझौता निम्नलिखित निबंधनों और शर्तों के आधार पर किया गया था –

(i) प्रत्यर्थी सं. 1 (सम्पतिया पुत्री स्वर्गीय जालिम सिंह) स्वीकार करती है कि वादी-अपीलार्थी सलेहरी देवी कुंजन महतो की पुत्री है ।

(ii) प्रत्यर्थी सं. 1 स्वीकार करती है कि कुंजन महतो द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में निष्पादित तारीख 10 जुलाई, 1987 का अभिकथित दान विलेख अवैध, शून्य और अप्रवर्तनीय है और यह कि प्रत्यर्थी सं. 1 को उक्त दान विलेख के कारण न तो कोई हक और न ही कब्जा व्युत्पन्न होता है ।

(iii) प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि वादी-अपीलार्थी सलेहरी देवी अपने पिता कुंजन महतो की मृत्यु के पश्चात् उसकी संपत्तियों पर काबिज हुई थी चूंकि वह अपने पिता की एकमात्र जीवित विधिक उत्तराधिकारी थी ।

(iv) वादी-अपीलार्थी स्वीकार करती है कि उसे संपूर्ण वाद-संपत्तियों में केवल आधा हिस्सा मिला था और अन्य आधा हिस्सा प्रत्यर्थी सं. 1 सम्पतिया देवी का है ।

(v) इस अस्पष्टता को दूर करने के लिए कि कौन सी वाद संपत्ति किसके हिस्से में जाएगी, यह स्पष्ट किया जाता है कि वादपत्र की अनुसूची 1 की संपत्ति, जिसे अनुलग्नक-1 बनाया गया है, जिसमें संपत्तियों का विस्तृत ब्योरा अंतर्विष्ट है, वादी-अपीलार्थी के हिस्से में जाएगी और शेष वाद संपत्तियां,

जो वादपत्र की अनुसूची-2 में वर्णित हैं, प्रत्यर्थी सं. 1 के हिस्से में जाएंगी ।

(vi) उनके अपने-अपने हिस्सों के अनुसार, अपीलार्थी तथा प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 उन पर काबिज हो गए हैं ।"

8. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर कुल नौ विवाद्यक विरचित किए । उन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

1. क्या वादी को कोई विधिमान्य वाद हेतु मिलता है ?

2. क्या यथा विरचित वाद कायम रखने योग्य है ?

3. क्या संदत्त न्यायालय फीस पर्याप्त है ?

4. क्या वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है ?

5. क्या वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 के अधीन है ?

6. क्या द्वितीय अपील 495/95 में माननीय उच्च न्यायालय का तारीख 30 मई, 1993 का समझौता और तारीख 15 सितंबर, 1994 का आदेश कपट के कारण अवैध, अप्रवर्तनीय और अप्रभावी है ?

7. क्या वादी को वाद संपत्ति में अधिकार, हक और हित मिलता है ?

8. क्या वादी दावा किए अनुसार डिक्री के लिए हकदार है ?

9. वादी को क्या अनुतोष दिए जाने चाहिएं ?

9. यह उल्लेख करना सुसंगत है कि विवाद्यक सं. 4 और 5 पर बल नहीं दिया गया था तथा विचारण न्यायाधीश द्वारा अभिलेख पर साक्ष्य का सम्यक् मूल्यांकन करने के पश्चात् गुणागुण के आधार पर तारीख 31 जुलाई, 1998 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा शेष विवाद्यक अपीलार्थी-वादी के विरुद्ध विनिश्चित किए गए थे, जिन्हें अपीलार्थी-वादी द्वारा हक अपील सं. 80/98(3/99) में विद्वान् जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील में चुनौती दी गई थी । अभिलेख पर साक्ष्य

का सम्यक् मूल्यांकन करने के पश्चात् अपील न्यायालय द्वारा तारीख 5 मई, 2003 के अपने निर्णय द्वारा अपील खारिज कर दी गई थी, जिसे अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष 2003 की द्वितीय अपील सं. 153 में चुनौती दी गई थी और उसे तारीख 20 अप्रैल, 2009 के निर्णय द्वारा समावेदन के प्रक्रम पर ही खारिज कर दिया गया था, जो कि हमारे समक्ष अपील में विषय-वस्तु है ।

10. अपीलार्थी-वादी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3क के उपबंध केवल वाद के पक्षकारों पर लागू होते हैं और उक्त उपबंध समझौता डिक्री में किसी पर-व्यक्ति पर लागू नहीं होते हैं, इसलिए समझौता डिक्री में पर-व्यक्ति समुचित कार्यवाहियों में अपनी शिकायत को उठाने के लिए एक अलग वाद फाइल करने के लिए सदैव स्वतंत्र है । प्रस्तुत परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी-वादी की अपील को समावेदन के प्रक्रम पर खारिज करके और समझौता डिक्री को प्रश्नगत करने के लिए उसे उपचारहीन बनाकर एक स्पष्ट गलती कारित की थी, जिससे प्रश्नगत संपत्ति पर उसका अधिकार गंभीर रूप से प्रभावी हुआ था और अपीलार्थी-वादी को एकमात्र उपलब्ध उपचार प्रश्नगत भूमि पर अपने उस अधिकार का दावा करते हुए एक वाद फाइल करने का था, जो कार्यवाहियों के पक्षकारों में से एक द्वारा तारीख 6 जनवरी, 1983 को उच्च न्यायालय द्वारा पारित समझौता डिक्री से बहुत पहले निष्पादित एक विक्रय विलेख के आधार पर सृजित हुआ था ।

11. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि जब सलेहरी द्वारा फाइल किया गया पूर्ववर्ती वाद तारीख 30 दिसंबर, 1983 को गुणागुण के आधार पर खारिज कर दिया गया था, उसके पश्चात् सम्पतिया ने तारीख 6 जनवरी, 1984 को वाद-संपत्ति अपीलार्थी-वादी को उसके पक्ष में निष्पादित दान विलेख के आधार पर बेच दी थी । सम्पतिया किसी प्रतिफल के बिना अपने अभिवचनों के विरुद्ध समझौता करने के लिए स्वतंत्र नहीं थी और सम्पतिया के ऐसे कृत्य से किसी प्रकार के सशक्त कारण के बिना अपने क्रेता/अपीलार्थी/वादी के अधिकारों को बेइमानीपूर्वक और कपटपूर्वक विफल करने के लिए सलेहरी के साथ उसकी मिली-भगत

स्पष्ट रूप से विवक्षित होती है ।

12. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों का समर्थन करते हुए यह दलील दी कि कम से कम उस समझौता डिक्री को, जो पक्षकारों के बीच निष्पादित की गई थी, कार्यवाहियों के पर-व्यक्ति द्वारा भी प्रश्नगत करने के लिए स्वतंत्रता नहीं थी, यद्यपि अपीलार्थी-वादी द्वारा विधि के अधीन ग्राह्य अपने स्वयं के अधिकारों के संरक्षण के लिए वाद फाइल किया जा सकता था किंतु, वर्तमान कार्यवाहियों में, वाद यह घोषणा करने की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया था कि पटना उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में तारीख 15 सितंबर, 1994 की समझौता डिक्री को अवैध घोषित किया जाए, जो कि कपट और दुर्व्यपदेशन द्वारा अभिप्राप्त की गई थी और सिविल न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3क के अधीन वर्जन को ध्यान में रखते हुए न्यायनिर्णयन करने के लिए स्वतंत्र नहीं था । इसके अतिरिक्त, विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर विनिर्दिष्ट रूप से विवाद्यक सं. 6 और 7 विरचित किए थे और उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध पारित तारीख 15 सितंबर, 1994 की समझौता डिक्री के प्रभाव के संबंध में एक निष्कर्ष अभिलिखित किया था । यहां तक कि वाद संपत्ति में अपीलार्थी के अधिकार, हक और हित के विषय में विवाद्यक सं. 7 के संदर्भ में निष्कर्ष गुणागुण के आधार पर उसके विरुद्ध विनिश्चित किया गया था । प्रस्तुत परिस्थितियों में, इस अपील में कोई सार प्रतीत नहीं होता है और इसे खारिज किया जाना चाहिए ।

13. संक्षिप्त प्रश्न, जो हमारे अवधारण के लिए उद्भूत होता है, यह है कि क्या अपीलार्थी-वादी द्वारा पटना उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में पारित तारीख 15 सितंबर, 1994 की समझौता डिक्री के विरुद्ध घोषणा करने की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 और नियम 3क के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए कायम रखने योग्य था या नहीं । इस प्रक्रम पर तुरंत संदर्भ के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश नियम 3 और 3क को उद्धृत

किया जा सकता है :–

"**3. वाद में समझौता** – जहां न्यायालय को समाधानप्रद रूप में यह साबित कर दिया जाता है कि वाद पक्षकारों द्वारा लिखित और हस्ताक्षरित किसी विधिपूर्ण करार या समझौते के द्वारा पूर्णत: या भागत: समायोजित किया जाता है या जहां प्रतिवादी वाद की पूरी विषय-वस्तु के या उसके किसी भाग के संबंध में वादी की तुष्टि कर देता है, वहां न्यायालय ऐसे करार, समझौते या तुष्टि के अभिलिखित किए जाने का आदेश करेगा और जहां तक कि वह वाद के पक्षकारों से संबंधित है, चाहे करार, समझौते या तुष्टि की विषयवस्तु वही हो या न हो जो कि वाद की विषय-वस्तु है, वहां तक तद्नुसार डिक्री पारित करेगा :

परंतु जहां एक पक्षकार द्वारा यह अभिकथन किया जाता है और दूसरे पक्षकार द्वारा यह इनकार किया जाता है कि कोई समायोजन या तुष्टि तय हुई थी वहां न्यायालय इस प्रश्न का विनिश्चय करेगा, किंतु इस प्रश्न के विनिश्चय के प्रयोजन के लिए किसी स्थगन की मंजूरी तब तक नहीं दी जाएगी जब तक कि न्यायालय, ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, ऐसा स्थगन मंजूर करना ठीक न समझे ।

स्पष्टीकरण – कोई ऐसा करार या समझौता जो भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) के अधीन शून्य या शून्यकरणीय है, इस नियम के अर्थ में विधिपूर्ण नहीं समझा जाएगा ।

**3क. वाद का वर्जन** – कोई डिक्री अपास्त करने के लिए कोई वाद इस आधार पर नहीं लाया जाएगा कि वह समझौता, जिस पर डिक्री आधारित है, विधिपूर्ण नहीं था ।"

14. विधायी आशय के रूप में जो प्रकट होता है, उस पर **पुष्पा देवी भगत (मृत) विधिक प्रतिनिधि साधना राय (श्रीमती) की मार्फत** बनाम **राजिन्दर सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा आदेश

---

[1] (2005) 5 एस. सी. सी. 566.

23 नियम 3 और तारीख 1 फरवरी, 1977 से जोड़े गए नियम 3क की स्कीम को ध्यान में रखते हुए विस्तारपूर्वक विचार किया गया था । सुसंगत पैरा निम्नलिखित हैं :–

"17. जो स्थिति आदेश 23 के संशोधित उपबंधों से प्रकट होती है, उसका सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है –

(i) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(3) में अंतर्विष्ट विनिर्दिष्ट वर्जन को ध्यान में रखते हुए किसी सहमतिजन्य डिक्री के विरुद्ध कोई अपील कायम रखने योग्य नहीं है ।

(ii) आदेश 43 नियम 1 के खंड (ड) की समाप्ति को दृष्टिगत करते हुए समझौता अभिलिखित करने (या समझौता अभिलिखित करने से इनकार करने) वाले न्यायालय के आदेश के विरुद्ध कोई अपील कायम रखने योग्य नहीं है ।

(iii) किसी डिक्री को इस आधार पर अपास्त करने के लिए कि समझौता विधिपूर्ण नहीं था, नियम 3क में अंतर्विष्ट वर्जन को दृष्टिगत करते हुए कोई स्वतंत्र वाद फाइल नहीं किया जा सकता है ।

(iv) सहमतिजन्य डिक्री एक पुरोबंद के रूप में लागू होती है और तब तक विधिमान्य और आबद्धकर होती है जब तक कि इसे आदेश 23 नियम 3 के परंतुक के अधीन आवेदन पर आदेश द्वारा उस न्यायालय द्वारा अपास्त नहीं की जाती है जिसने सहमतिजन्य डिक्री पारित की थी ।

अत: किसी सहमतिजन्य डिक्री के पक्षकार को ऐसी सहमतिजन्य डिक्री से बचने के लिए एकमात्र उपलब्ध उपचार उस न्यायालय में समावेदन करने का है जिसने समझौता अभिलिखित किया था और इसके निबंधनों के अनुसार डिक्री बनाई थी तथा यदि यह सिद्ध करना होगा कि कोई समझौता नहीं हुआ था । उस स्थिति में, वह न्यायालय, जिसने समझौता अभिलिखित किया था, स्वयं इस प्रश्न पर विचार और विनिश्चय करेगा कि एक विधिमान्य समझौता था या नहीं । ऐसा इसलिए है क्योंकि एक सहमतिजन्य डिक्री कुछ

और नहीं अपितु पक्षकारों के बीच न्यायालय के अनुमोदन के साथ अधिरोपित समझौता है । सहमतिजन्य डिक्री की विधिमान्यता पूर्णतया उस करार या समझौते की विधिमान्यता पर निर्भर करती है, जिसके आधार पर यह बनाई जाती है । द्वितीय प्रतिवादी, जिसने सहमतिजन्य समझौता डिक्री को चुनौती दी थी, वह इस स्थिति से पूरी तरह से अभिज्ञ था क्योंकि उसने तारीख 21 अगस्त, 2001 को सहमतिजन्य डिक्री को अपास्त करने के लिए यह अभिकथन करते हुए एक आवेदन फाइल किया था कि विधि के अनुसार कोई विधिमान्य समझौता नहीं हुआ था । महत्वपूर्ण रूप से, किसी अन्य प्रतिवादी ने सहमतिजन्य डिक्री को चुनौती नहीं दी थी । द्वितीय प्रतिवादी ने उसके पश्चात् कुछ ही दिनों के भीतर (अर्थात् 27 अगस्त, 2001 को) उन कारणों से जो उसकी सर्वोत्तम जानकारी में थे, एक अपील फाइल की और उस न्यायालय के समक्ष फाइल आवेदन को जारी न रखने का विकल्प चुना, जिसने सहमतिजन्य डिक्री पारित की थी । द्वितीय प्रतिवादी द्वारा फाइल की गई ऐसी अपील संहिता की धारा 96(3) में अंतर्विष्ट अभिव्यक्त वर्जन को ध्यान में रखते हुए कायम रखने योग्य नहीं थी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

15. **आर. राजन्ना** बनाम **एस. आर. वेंकटस्वामी और अन्य**[1] वाले मामले में भी इस न्यायालय द्वारा आदेश 23 नियम 3 और नियम 3क की व्याप्ति और आशय पर विचार किया गया था, जिसमें इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"11. उपरोक्त को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट है कि आदेश 23 नियम 3 के परंतुक के निबंधनों के अनुसार जहां पक्षकारों द्वारा लिखित और हस्ताक्षरित एक विधिपूर्ण करार या समझौते द्वारा किसी वाद के समायोजन या तुष्टि के संबंध में एक पक्षकार द्वारा अभिकथन किया जाता है और दूसरे पक्षकार द्वारा इनकार किया जाता है, वहां वह न्यायालय, जिसके समक्ष ऐसा प्रश्न उठाया जाता

---

[1] (2014) 15 एस. सी. सी. 471.

है, ऐसे प्रश्न का विनिश्चय करेगा । महत्वपूर्ण बात यह है कि आदेश 23, नियम 3 के स्पष्टीकरण के निबंधनों के अनुसार, करार या समझौता उक्त नियम के अर्थांतर्गत तब विधिपूर्ण होना नहीं समझा जाएगा, यदि वह करार या समझौता संविदा अधिनियम, 1872 के अधीन शून्य या शून्यकरणीय है । इसका निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक मामले में, जहां यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या पक्षकारों द्वारा लिखित और हस्ताक्षरित एक विधिपूर्ण करार या समझौता था या नहीं, इस प्रश्न का अवधारण कि क्या करार या समझौता विधिपूर्ण है या नहीं, संबंधित न्यायालय द्वारा किया जाएगा । विधिपूर्ण क्या है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या अभिकथनों से समझौते और डिक्री में ऐसी कोई कमी होने का सुझाव मिलता है जिससे समझौता और डिक्री संविदा अधिनियम के अधीन शून्य या शून्यकरणीय बन जाएगी । अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आदेश 23, नियम 3क में किसी डिक्री को इस आधार पर अपास्त करने के लिए वाद पर स्पष्ट रूप से वर्जन लगाया गया है कि समझौता, जिसके आधार पर डिक्री की गई थी, विधिपूर्ण नहीं था । इससे यह विवक्षित है कि जब तक करार या समझौते की विधिपूर्णता से संबंधित प्रश्न उस न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया जाता है जिसने किसी ऐसे करार या समझौते के आधार पर डिक्री पारित की थी, केवल और केवल वही न्यायालय उस प्रश्न की परीक्षा और उसका अवधारण कर सकता है । न्यायालय पक्षकारों को उस विषय पर एक अलग वाद फाइल करने के लिए निदेश नहीं दे सकता है क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3क के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए कोई ऐसा वाद फाइल नहीं किया जाएगा । स्पष्ट रूप से, प्रस्तुत मामले में ऐसा ही घटित हुआ था । जब अपीलार्थी ने समझौता डिक्री की विधिमान्यता को चुनौती देने के लिए 2005 का मूल वाद सं. 5326 फाइल किया तो, उस न्यायालय ने, जिसके समक्ष वाद लाया गया था, प्रत्यर्थियों द्वारा किए गए आवेदन के आधार पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन वादपत्र को यह अभिनिर्धारित करते हुए नामंजूर कर दिया था कि ऐसा वाद सिविल प्रक्रिया संहिता के

आदेश 23, नियम 3क के उपबंधों द्वारा वर्जित था । इस प्रकार वाद नामंजूर होने के पश्चात्, प्रतिवादियों (यहां पर प्रत्यर्थियों) को यह तर्क देने के लिए मुश्किल से सुना जा सकता है कि वादी (यहां अपीलार्थी) को 2005 के मूल वाद सं. 5326 के अनुसरण में समझौता डिक्री के विरुद्ध अपना उपचार आगे बढ़ाना चाहिए था और यदि वाद में के वादपत्र को अपना उपचार आगे बढ़ाने के लिए नामंजूर कर दिया था तो ऐसी नामंजूरी के विरुद्ध उच्चतर न्यायालय के समक्ष समावेदन करना चाहिए था ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

16. विधान-मंडल द्वारा तारीख 1 फरवरी, 1977 से सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन), 1976 द्वारा संशोधन पुर:स्थापित करके आदेश 23 के नियम 3क को प्रवर्तन में लाया गया था, जिसमें किसी डिक्री को इस आधार पर अपास्त करने के लिए वाद संस्थित करने का वर्जन सृजित किया गया है कि जिस समझौते पर डिक्री आधारित थी, वह विधिपूर्ण नहीं था । पक्षकारों के बीच समझौता कराने का प्रयोजन सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष लंबित विभिन्न विवादों को सदैव के लिए समाप्त करना है ।

17. विनिश्चयों की अंतिमता सभी न्यायनिर्णयनकारी न्यायालयों का अंतर्निहित सिद्धांत है । इस प्रकार, पक्षकारों के बीच हुए समझौता कदापि और आगे मुकदमेबाजी के सृजन का आधार नहीं होना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3क में यह विनिर्दिष्ट वर्जन लगाया गया है कि कोई डिक्री अपास्त करने के लिए वाद इस आधार पर नहीं लाया जाएगा कि वह समझौता, जिस पर डिक्री आधारित है, विधिपूर्ण नहीं था । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के नियम 3 की स्कीम मुकदमेबाजी की बहुलता को निवारित करने और पक्षकारों को सौहार्दपूर्ण रूप से एक ऐसा समझौता करने की अनुज्ञा देने के लिए है जो विधिपूर्ण हो, लेखबद्ध हो और पक्षकारों की ओर से एक स्वैच्छिक कृत्य हो । न्यायालय सहमति के आधार पर ऐसा समझौता कराने में और इस समझौते को अंतिमता देने में सहायक हो सकता है । न्यायालय को कभी भी किसी अनिच्छुक पक्षकार पर कोई समझौता

अधिरोपित करने के लिए पक्षकार नहीं होना चाहिए, ऐसे पक्षकार को न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के परंतुक के अधीन आवेदन के आधार पर इसे प्रश्नगत किए जाने की स्वतंत्रता है ।

18. यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि पहले आदेश 43 नियम 1(ड) के अधीन, आदेश 23, नियम 3 के अधीन करार, समझौता या तुष्टि अभिलिखित करने या अभिलिखित करने से इनकार करने के लिए आदेश के विरुद्ध अपील, जिसमें समझौता अभिलिखित किया था और यह विनिश्चय किया गया था कि यह एक विधिमान्य समझौता था या नहीं, कायम रखने योग्य थी । किंतु संशोधनकारी अधिनियम द्वारा, पूर्वोक्त खंड को हटा दिया गया है, जिसका परिणाम यह है कि अब आदेश 23 के नियम 3 के अधीन किसी करार या समझौते को अभिलिखित करने या अभिलिखित करने से इनकार करने के आदेश के विरुद्ध अपील कायम रखने योग्य नहीं है । इस तथ्य के प्रति सचेत रहते हुए कि कोई समझौता अभिलिखित करने या समझौता अभिलिखित करने से इनकार करने के आदेश के विरुद्ध अपील के अधिकार को छीना जा रहा है, आदेश 43 में एक नया नियम 1क जोड़ा गया था, जो कि निम्नलिखित है :–

> **"1क. डिक्रियों के विरुद्ध अपील में के ऐसे आदेशों पर आक्षेप करने का अधिकार जिनकी अपील नहीं की जा सकती** – (1) जहां इस संहिता के अधीन कोई आदेश किसी पक्षकार के विरुद्ध किया जाता है और तदुपरांत निर्णय ऐसे पक्षकार के विरुद्ध सुनाया जाता है और डिक्री तैयार की जाती है, वहां ऐसा पक्षकार डिक्री के विरुद्ध अपील में यह प्रतिवाद कर सकेगा कि ऐसा आदेश नहीं किया जाना चाहिए था और निर्णय नहीं सुनाया जाना चाहिए था ।
>
> (2) ऐसी डिक्री के विरुद्ध अपील में जो समझौता अभिलिखित करने के पश्चात् या समझौता अभिलिखित किया जाना नामंजूर करने के पश्चात् वाद में पारित की गई है, अपीलार्थी को इस आधार पर डिक्री का प्रतिवाद करने की स्वतंत्रता होगी कि समझौता अभिलिखित किया जाना चाहिए था या नहीं किया जाना चाहिए था ।"

19. इस प्रकार, जो संशोधन पुर: स्थापित किया गया था, उसके पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3क के अंतर्गत आने वाले मामलों में न तो समझौता अभिलिखित करने वाले आदेशों के विरुद्ध अपील करने का और न ही कोई वाद फाइल करने का कोई उपचार उपलब्ध है । इसलिए आदेश 43 के नियम 1क(2) के अधीन उस पक्षकार को एक अधिकार दिया गया है, जो समझौते से इनकार करता है और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के नियम 3 के परंतुक के निबंधनों के अनुसार उस बाबत न्यायालय के आदेश के लिए निवेदन करता है । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(3) ऐसी अपील के लिए वर्जन नहीं होगा, क्योंकि यह धारा वहां लागू होती है जहां समझौते या करार का तथ्य विवादग्रस्त नहीं है ।

20. वर्तमान मामले में, विभाजन के लिए वाद वर्ष 1978 में फाइल किया गया था और विचारण न्यायालय के विनिश्चय के पश्चात् मामला प्रथम अपील में और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील सं. 495/86 में गया था । प्रथम अपील, जो यथा उल्लिखित वाद की निरंतरता थी, के लंबित रहने के दौरान लंबित कार्यवाहियों के पक्षकारों में से एक पक्षकार अर्थात् सम्पतिया ने अभिकथित रूप से तारीख 6 जनवरी, 1984 को अपीलार्थी के साथ एक विक्रय विलेख किया था । असंदिग्ध रूप से, उस भूमि की बाबत, जो तारीख 6 जनवरी, 1984 के विक्रय विलेख की विषय-वस्तु थी, अधिकार, हक और हित से संबंधित विवाद्यक अपूर्ण था और अंतिम रूप से विनिश्चित नहीं किया गया था । इस अर्थ में, अपीलार्थी का दावा लंबित अपील में सम्पतिया के पक्ष में या उसके विरुद्ध होने वाले विनिश्चय द्वारा शासित होना चाहिए था । इसका अवश्यम्भावी निष्कर्ष यह है कि तारीख 6 जनवरी, 1984 के विक्रय विलेख द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में किए गए अभिकथित संव्यवहार उक्त कार्यवाहियों के परिणाम की पालना में होना चाहिए था, जिसकी परिणति 1986 की द्वितीय अपील सं. 495 में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितंबर, 1994 के समझौता डिक्री में हुई थी ।

21. वास्तव में, अपीलार्थी कथित समझौता डिक्री का एक पक्षकार

नहीं था । तथापि, वह तारीख 6 जनवरी, 1984 के कथित विक्रय विलेख में निर्दिष्ट भूमि पर अधिकार, हक और हित का दावा कर रहा था, जो उसके द्वारा सम्पतिया-निर्णीत ऋणी तथा वाद में पक्षकार से खरीदी गई थी । यह सुस्थिर है कि द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा पारित समझौता डिक्री का संबंध वाद के पक्षकारों के बीच वाद संस्थित करने की पिछली तारीख से होगा । अपीलार्थी द्वारा अब संस्थित किए गए वाद में, अधिक से अधिक, वह सम्पतिया के विरुद्ध अनुतोष की ईप्सा कर सकता था, किंतु उच्च न्यायालय द्वारा विभाजन के लिए वाद में पारित की गई समझौता डिक्री को प्रश्नगत करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी विभाजन के लिए वाद में की कार्यवाहियों के एक पक्षकार (सम्पतिया) द्वारा अभिकथित रूप से तारीख 6 जनवरी, 1984 को निष्पादित कथित विक्रय विलेख के आधार पर न्यागत अपने अधिकार, हक या हित के संरक्षण के लिए वाद फाइल कर सकता था, जिसकी न्यायालय द्वारा स्वतंत्र रूप से विधि के अनुसार इसके अपने गुणागुण के आधार पर परीक्षा की जा सकती थी । विचारण न्यायालय, किसी भी दशा में, विभाजन के लिए वाद में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितंबर, 1994 की समझौता डिक्री की विधिमान्यता के संबंध में इस अपील में अपीलार्थी की शिकायत का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम नहीं होगा ।

22. दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी केवल अपने पूर्वाधिकारी-सम्पतिया के माध्यम से समझौता डिक्री के संदर्भ में, सम्पतिया को उपलब्ध अधिकारों और उपचारों की सीमा तक, दावा कर सकता है । केवल इस कारण कि अपीलार्थी प्रस्तुत मामले के तथ्यों में समझौता डिक्री का पक्षकार नहीं था, इस बात से अपीलार्थी को कोई सहायता नहीं मिलेगी, उच्च न्यायालय द्वारा पारित की गई समझौता डिक्री की विधिमान्यता को सिविल न्यायालय के समक्ष एक मूल वाद के द्वारा इसे कपटपूर्ण, अवैध और उस पर आबद्धकर न होने की घोषणा करने के लिए वाद हेतुक देने की बात तो दूर । मान लिया जाए, वह विभाजन वाद के पक्षकारों द्वारा किए गए समझौते की विधिमान्यता के बारे में चुनौती दे सकता था, फिर भी केवल उच्च न्यायालय ही, जिसने समझौता स्वीकार किया था और उसके आधार पर डिक्री पारित की थी, सिविल प्रक्रिया संहिता के

आदेश 23 के नियम 3 के परंतुक के अधीन इसकी परीक्षा कर सकता था, कोई और न्यायालय नहीं । अत: अवश्यम्भावी निष्कर्ष यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के नियम 3क के अधीन विनिर्दिष्ट वर्जन को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी द्वारा सिविल न्यायालय के समक्ष संस्थित वाद कायम रखने योग्य नहीं था, जैसा कि आक्षेपित निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है ।

23. प्रस्तुत मामले में, वाद वर्ष 1995 में संस्थित किया गया था और अब 25 वर्ष व्यतीत हो गए हैं और विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध तारीख 6 जनवरी, 1984 के कथित विक्रय विलेख के आधार पर न्यागत वाद संपत्ति में अधिकार, हक और हित से संबंधित विवाद्यक सं. 7 के संदर्भ में निष्कर्ष अभिलिखित करने के पश्चात् और अपीलार्थी की प्रेरणा पर की गई अपील में अपील न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं करने के कारण विद्यमान परिस्थितियों में मामले को विद्वान् विचारण न्यायालय को अपीलार्थी-वादी की प्रेरणा पर फाइल किए गए वाद की तारीख 6 जनवरी, 1984 के कथित विक्रय विलेख, जो अभिकथन किए गए अनुसार समझौते के एक पक्षकार (सम्पतिया) द्वारा निष्पादित किया गया था, के आधार पर न्यागत होने वाले उसके अधिकार, हक और हित के संरक्षण के लिए स्वतंत्रपूर्वक परीक्षा करने के लिए प्रतिप्रेषित करने से परिवर्तित परिस्थितियों में कोई परियोजन सिद्ध नहीं हो सकेगा, इतना ही नहीं जब निचले न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष अपीलार्थी-वादी के विरुद्ध अभिलिखित किए गए हैं ।

24. परिणामत:, हमारे मत में, यह अपील सारहीन है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । खर्चे के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

25. लंबित आवेदन (आवेदनों), यदि कोई हों, का निपटारा हो जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.